अनेकांतवाद और स्वाध्वर

कोई भी धर्मप्रवर्तक अपने शासनको तथ्यों और व्यावहारिक रूप देने के लिए मनुष्य-समाजके सामने दो बातोंको दृष्टि करता है—एक तो धर्मका उद्देश्य है और दूसरा उसका विवेचन-रूप है। दूसरे शब्दों में, धर्मके उद्देश्य-रूप है साधारण, कार्यया या सिद्धान्त कह सकते हैं और उसके विवेचन-रूप को साधन, कारण या आवश्यकता कह सकते हैं। बौद्ध विज्ञानके परिप्रेक्ष्यक शब्दों में, धर्मके इन दोनों रूपों को कभी निश्चयत्व में और व्यवहारिक रूप कहा गया है। ऋषिमानाधारियों ने आदिवान्यानें वही निश्चय-रूप उद्देश्य वर्तना है और व्यवहारिक है इस निश्चय-रूपी की प्राप्ति के लिए उसका कार्यमय रूप है।

इन दोनों वातांको जो धर्मप्रवर्तक जिन्होंने सरल, स्वतंत्र और व्यवस्थित रूप से रखनेका प्रयत्न करता है उसका शासन संसारके सबसे अधिक महत्वपूर्ण समस्या जो सकता है। इतना ही नहीं, वह सबसे अधिक प्रायोजिकों को हिस्से कर देना होता है। इससे प्रस्तुत धर्मप्रवर्तकका क्षेत्र शासनिक सिद्धांतके और दृष्टिकोणके अंतरमें उत्पन्न होता है। वैदिकभावनाके ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने शासनिक तत्त्वों का व्यवस्थित रूप से उनकी तथ्यसत्यता विश्वसनीय तक पहुँचानेके लिए दर्शनशास्त्रके आधारस्तरभूमि रूप अनेकांतवाद और स्वाध्वर इन दो तत्त्वोंका आवश्यक निर्णय किया।

अनेकांतवाद और स्वाध्वर ये दोनों दर्शनशास्त्रके तत्त्वों में महत्वपूर्ण होते हैं। जैनदर्शन इसी तरह समालंबन के रूप में विवरण हुआ संसारके समस्त दर्शनोंके लिए ज्ञान तक अवज्ञा बना हुआ है। दूसरे दर्शन जैनदर्शनका जीवन-महत्व का प्रयास करते हो इसका दृष्टि देखने मात्र उनकी निवेदन होकर वैद्युत जाना पड़ता है—किसी के भी पास इसके तोड़ने के साधन मिल जाते हैं।

जब भी अनेकांतवाद और स्वाध्वरका इतना यह नहीं बढ़ा हुआ है कि नि:संकोच कहा जा सकता है कि साधारणजनकी तात्पर्य ही क्या? अंजन विद्वानोंके साथ-साथ जानने; जैन विद्वान् भी इनका विवेचनात्मक करने में असमर्थ है।

अनेकांतवाद और स्वाध्वर ये दोनों ज्ञान एकांतक है या प्रत्येकका मिशन अथवा मिशन? अनेकांतवाद और स्वाध्वरका स्वतंत्र स्वरूप क्या है? अनेकांतवाद और स्वाध्वर दोनोंका प्रयोगमय एक है या स्वतंत्र? आदि समस्याएं आज उम्मेदों समूहे उपस्थित हैं।

यदापि इन समस्याओंका हमारी व दर्शनशास्त्रकी उन्नति या अवश्यतिके प्रत्येकस्थल में कोई सम्बंध नहीं है परंतु अनेकांतवादको अवश्यकता नहीं है। क्योंकि जिस प्रकार एक ग्रामीण कब श्रद्धालू, अलंकार, रस, रूपित जाविका शास्त्रीय परिसंधान न करके भी चिंता, अलंकारों आदि प्रस्तुत अनुभवहीन अवश्यकता वह अवश्यकता जिसको प्रभावित करने में समर्थ होता है उसी प्रकार सर्वसाधारण लोग अनेकांतवाद और स्वाध्वरके शासनीय परिसंधान से होनेपर भी परस्पर विशेषता की जीवनसंधारी समस्याओंकी इधर दोनों तत्त्वोंके बलपर अविवाह रूप से समाधान करने हेतु अपने जीवन-संधारी आवश्यकोंको यथापूर्व प्रमाण बना रखते हैं। विवरण इसका फल भी भी मनो-मनो ज्ञान, ज्ञानविनीतके जीवनसंधारी व्यवहारों में परस्पर विशेषताओं होने से कारण जो लड़ाई-गाई पैदा होते हैं वे सब अनेकांतवाद और स्वाध्वरके रूपोंको समझनेके ही परिपक्व है। इसी तरह अंजन दार्शनिक विद्वान् भी अनेकांतवाद और स्वाध्वरके दर्शनशास्त्रके अंग न मानकर भी अपने विद्वानोंके सामने उपस्थित हुए परस्पर विशेषता की समस्याओंके इधर-धर अवस्था करने में समय होते हेतु जरूर आ रहे हैं, तो भी मनो-मनो ज्ञानविनीतके विशेषताओं परस्पर विशेषताओं होने से कारण उनके द्वारा
अनेक सिद्धांतों को तत्व और महत्वपूर्ण तथा दूसरे सिद्धांतों को असत्य और महत्वपूर्ण तिक्क करनें जो अनेक चेष्टा की जाती है वह भी अनेकतावाद और स्वाधारक तथा स्वाधारक न समझने ही रहते हैं।

सारांश यह कि लोगों में दूसरे के प्रति जो विरोधी माननाएं तथा धर्मों के अप्राप्तिक वाच दिखाई दे रहे हैं उसका कारण अनेकतावाद और स्वाधारक न समझना ही कहा जा सकता है।

जैनी लोग विचार अनेकतावादी और स्वाधारक कहे जाते हैं और वे जैन भी अनेकतावादी ऐसा कहते हैं, फिर भी उन्हें फिना विचार वर्ग के जीवों को समझना असत्य और उनके धर्मों में दूसरे के प्रति जो विरोधी भाव-मानना पाई जाती है उसके दो कारण हैं—एक तो यह कि उन्हें भी अपने धर्मों को समझना सत्य और महत्वपूर्ण तथा दूसरे धर्मों को समझना असत्य और महत्वपूर्ण समझने ही अहंकारवृत्ति पैदा हो जाते हैं। अर्थात् उन्होंने अनेकतावाद और स्वाधारक के चेतना विश्व विनिमय संपर्क नाम दाला है। और दूसरे यह कि अनेकतावाद और स्वाधारक व्यवहारिक उपयोगिताओं वे भी मूल्य हुए हैं।

अनेकतावाद और स्वाधारक अर्थात्

बहुत से बहुत इन दोनों शाखाओं का अर्थ स्थायी, कमजोर मानता है और उसी तरह वे अनेकतावाद और स्वाधारक स्वाधारक वाचन प्रति समझना स्थायी करते हैं—उनके माते अनेकतावाद और स्वाधारक वाचन प्रति स्थायी। परंतु “ब्याख्या वेदांत” हेतु जानकार के अनुसार श्लोक अनेकतावाद और स्वाधारक का श्लोक है, बाहर नहीं है।

यदि कुछ जानकारों भी कहते हैं कि श्लोक अनेकतावाद अर्थात् अर्थक स्थायी किया है, परंतु वह अर्थ व्यवहारिक नहीं मानता है—केवल अर्थ स्वाधारक अनेकतावाद अर्थक स्थायी। यदि ये चर्चा करेंगे, तो वे अपने अर्थक स्थायी करेंगे हैं। जिस अर्थ दे देंगे सुझाव, तो वे अपने अर्थक स्थायी करेंगे और वे समझना भी नहीं, कि वे वह अर्थ करते हैं। एवं वह जानता है, कि श्लोक अनेकतावाद अर्थक स्थायी है। अर्थात् हमें यह जानना होगा कि कैसे श्लोक अनेकतावाद अर्थक स्थायी है।

हिंदी में भी यह पूरा समझ ही होगा कि कैसे श्लोक अर्थक स्थायी है। अर्थात् हमें यह जानना होगा कि कैसे श्लोक अर्थक स्थायी है। अर्थात् हमें यह जानना होगा कि कैसे श्लोक अर्थक स्थायी है।

अनेकतावाद और स्वाधारक अर्थात्

अनेकतावाद शब्द के दो शब्द आते हैं—अनेक, अन्त और बाहर। इसलिये अनेक—नामा, अन्त—बस्तु, धर्मों, वाद—स्वाधारक का नाम ‘अनेकतावाद’ है। एक वस्तु मात्र धर्मशास्त्रों (वैदिक) के प्रायः सभी दस क्षेत्र स्फटिक करते हैं, जिससे अनेकतावादी कोई विशेषता नहीं रह जाती है और इसलिये उन धर्मों का क्षेत्र विशेष में समझता है और इसलिये उन धर्मों का क्षेत्र स्फटिक में समझता है। तब एक वस्तु मात्र प्रति विरोधी और अविरोधी नाम धर्मों का समझना बाहर होगा। यदि अनेकतावादी के अर्थक स्थायी कहा जा सकता है।
सरस्वती-वर्धमणि पृष्ठ ५० बंगला प्रयोग साधारण अभिधारण-प्राप्त

स्यादा वाले के दो शब्दांश हैं — स्यादा और बाद। आप लिखे अनुसार स्यादा और कथाचित्र वे दोनों शब्द एक अर्थके बोधक हैं — कथाचित्र शब्दका अर्थ है “किसी प्रकार”। यहीं अर्थ स्यादा शब्दका समानता अनुकूल है। बाद शब्दका अर्थ है मान्यता। “किसी प्रकारसे अथवा एक वृत्तिते—एक अवसरसे या एक अभिधारणसे”, इस प्रकारकी मान्यताका नाम स्यादा है। तात्पर्य यह है कि विरोधी और विरोधी नानाध्यापकी वस्तुमें अमूक धर्म अमूक वृत्तिः या अनुकू अपेक्षा या अमूक अभिधारण हैं तथा व्यवहारमें अमूक कवन, अमूक विचार, या अमूक कार्य, अमूक दृष्टि, अ मूक अपेक्षा, या अमूक अभिधारणकी लिखे हुए हैं। इस प्रकार वस्तुके किसी भी धर्म तथा व्यवहारकी सामाजिकव्यस्ताती सिद्धके लिये उसके दृढ़तिकोण या अपेक्षा का ध्यान रखना ही स्यादाका स्वरूप माना जा सकता है।

अनेकांत और स्यादाके प्रयोगका स्यादाका

(१) इस दोनोंका उल्लेखक स्वरूपसे ध्यान देनेसे मालूम पड़ता है कि जहाँ अनेकांतवाद हमारी बुद्धिको वस्तुमें समत्व घर्मकी और माननुसार स्वीकारता है वही स्यादा वस्तुके एक धर्मका ही प्रथानुसार भेद करनेमें समय है।

(२) अनेकांतवाद एक वस्तुमें परस्पर विरोधी और अर्थात धर्मका विचारता — वह वस्तुको नामा भाषाकी बालकपक ही जरीयताँ हो जाता है। स्यादा उस वस्तुको उन नामा वर्गीय कुद्रकियोंके बताकर हमारे व्यवहारमें आने योग्य बना देता है — अर्थात् वह नानाध्यापक वस्तु हमारे द्वारे किस हालतमें किस तरह उपयोगी हो सकती है, यह बात स्यादा बताता है। ऐसी दशकोंमें यों कह सकते हैं कि अनेकांतवादका फल विधानमात्रक है और स्यादाका फल उपयोगात्मक है।

(३) यह भी कहा जा सकता है कि अनेकांतवादका फल स्यादा है — अनेकांतवादकी मान्यताके ही स्यादाकी मान्यताको जन्म दिया है, क्योंकि जहाँ नानाध्यापका विचारण नहीं है वही दृढ़तेदकी कल्पना ही इसी स्वरूप है?

उल्लिखन तीन कारणोंसे विविधता स्पष्ट हो जाता है कि अनेकांतवाद और स्यादाका प्रयोग भिन्न-भिन्न स्पष्टों होनेमें बाधादें। इस तरह यह बात भीतरीति सिद्ध हो जाती है कि अनेकांतवाद और स्यादा वे दोनों एक नहीं हैं; परस्पर परस्पर अवश्य हैं। यदि अनेकांतवादकी मान्यताके बिना स्यादाकी मान्यताकी कोई आवश्यकताः नहीं है तो स्यादाकी मान्यताके बिना अनेकांतवादकी मान्यता भी निरर्थकी नहीं बल्कि असंगत ही सिद्ध होगी। इस वस्तुकी नानाध्यापक वात करनेमें भी जबतब उस नानाध्यापक कुद्रकी नहीं समझों मतबोलके नाना धर्मके मान्यता अनुपयोगी तो होगी ही, साथ ही वह मान्यता दुर्भ्रमक संगत भी नहीं कही जा सकेगी।

जैसे लंचन रोगीके लिये उपयोगी भी है और अनुपयोगी भी, यह तो हुआ लंचनके विषयमें अनेकांतवाद। ऐसीन हम दोनोंके लिये उपयोगी है और खिस रोगीके लिये यह अनुपयोगी है, इस दृष्टिकोणको बताने साय यह स्यादा न माना गया तो यह मान्यता न केवल व्यर्थ ही नहीं होगी, वृत्तिके निष्पक्ष रोगी लंचनकी सामाजिकव्यस्तातर उपयोगको भावनाके लिये लंचन करने को होगा तो उसे उस लंचनके द्वारा हानि ही उठायी पड़ेगी। इसलिये अनेकांतवादके द्वारा रोगीके लिये उपयोगी और अनुपयोगी दो धर्मके मान करने भी वह लंचन अमूक रोगीके लिये उपयोगी और अमूक रोगीके लिये अनुपयोगी है, इस दृष्टि-बादको बताने साय स्यादा मानना ही पड़ेगा।

एक बात और है, अनेकांतवाद वस्तुमें अभिभावक स्वरूप रखता है; क्योंकि वस्तुकी दृढ़त ही ध्यान—
नातमक रहती है। इसी प्रकार स्वाभाव धोता से अविक सम्बन्ध रहता है; जो उसकी दृष्टि हमेशा उप-योगात्मक रहा करती है। वक्ता अनेकान्तवादके द्वारा नानाध्वस्विस्द वस्तुका विश्वास करता है और भोला र्याहारके जरिये से उस कसूरके केवल अपने लिये उसपर परस्पर अत्यंत प्रभाव करता है।

इन कथनों से यह ताल्पर्व नहीं देना चाहिए कि वक्ता 'स्वाभाव' की मान्यताको और श्रोता 'अनेकान्त' की मान्यताको स्पष्टक नहीं रखता है। यदि वक्ता 'स्वाभाव' की मान्यताको स्पष्टक नहीं रखता तो वह एक वस्तुका परस्पर विरोधी घरेलू समस्या से निरस्त करनेके कारण उस नीत्रीय घरेलू स्पष्टक में विश्वास ही कैसे करेगा? ऐसा करते समय विरोधी निपटाते ही उसका प्रभाव उसका रोष उसका पीछा प्रकट हो जाता है। 

इसी तरह यदि श्रोता 'अनेकान्त' की मान्यताको स्पष्टक नहीं रखता तो वह वृद्धि में किस विषयमें कसरता है? व्यक्ति वृद्धिर्देखका विषय अनेकान्त अर्थात् वस्तुका नाना प्रकृति ही है।

इसलिए उपरें कथनों से वक्ता देना चाहिए कि वक्ता ने विश्वास प्रवत्तिक वह स्वाभाविक मान्यताबद्दल अनेकान्त की मान्यताको अपनाता है और भोला र्याहारके लिये उपयोग प्रवत्तिक वह अनेकान्त की मान्यताबद्दल स्वाभाविक मान्यताको अपनाता है।

मान सिया जाय कि एक बहुत है। अनेकान्तवादके अर्थिये इस सत्ताजोपर पहुँचे कि वह बहुत बहुत वस्तुका नाते नानाध्वस्विस्दका अर्थप्रवत्तिक है—वह पिता है, पुत्र है, माता है, भाई है भावि आदि बहुत कुछ है। हमने वक्ता जीतियोंसे उसके इन सम्पूर्ण घरमा निरूपण किया। स्वाध्वस्विस्द यह बात तब हुई कि वह विश्वास है स्वाभाव —किसी प्रकार—भूतात्मक अपने पुत्रको अपेक्षा; वह पुत्र है, स्वाभाव—किसी प्रकार अर्थात् अपने पतिको अपेक्षा; वह माता है स्वाभाव—किसी प्रकार अर्थात् अपने भाईको अपेक्षा, वह भाई है स्वाभाव—किसी प्रकार—अर्थात् अपने भाईको अपेक्षा।

अब यदि भोला लोगोंका उस मनुष्यसे इन बुद्धियोंसे किसी भी दृष्टिकी सम्बन्ध हैं तो वे अपनी अपनी दृष्टिको अपने लिये उपयोगी घरमा प्रभाव करते जायगे। पुत्र उसकी पिता कहेगा, पिता उसकी पुत्र कहेगा, माता उसकी माता कहेगी और भाई उसकी भाई कहेगा; लेकिन अनेकान्तवादको घरमा रहते हुए वे एक दूसरे से ब्यवहारका असंतति नहीं ठहरायेंगे। अतः

इस प्रकार अनेकान्तवाद और स्वाभाविक निष्पक्षका यह व्याख्यान असल है। बात है इसी प्रकार यह दोनों को स्वयं को समस्तको सफल होनेके साथ साथ वीर-महावानके शासनको सम्भवता रहती है और इस दोनों के मतलब द्वारा सांस्कृतिक और सांस्कृतिक पर स्वतः विश्वास है अर्थात् अनेकान्तवाद और स्वाभाविक रूपको अपने जीवनमें उतरार कर वीर-महावानके शासनकी अधिकारी लोकोपकारिका सिद्ध करनें समर्थ होंगे।